- उपसंहार -

उपसंहार

ईश्वर का सर्वश्रेष्ठ सृजन है मनुष्य और मनुष्य का सर्वश्रेष्ठ सृजन है साहित्य, जिसमें मानवसमाज सृष्टि का प्रतिबिंब अपने अंतर्बाह्य रूप से दृश्यमान होता है। नाटक उस प्रतिबिम्ब का सर्वोत्तम रूप है। प्राचीन काल सेही नाट्यविधा साहित्य में सर्वश्रेष्ठ एवं समाज में सर्वाधिक लोकप्रिय रही है। उसकी श्रेष्ठता एवं सर्वप्रियता का प्रधान कारण है, उसका दृश्यमान होना। दृश्यत्व के माध्यम से ही नाटक सहृदय को एक साथ श्रवण एवं मंचन का आनंद प्रदान करता है। नाटकीय घटनाओं का मंच पर प्रस्तुतिकरण, दर्शक को रसानुभूति का प्रत्यक्ष आस्वाद कराता है।

प्रायोगिकता नाटक की मौलिक विशेषता है। इसी विशेषता के कारण नाटक समस्त साहित्यविधाओं में श्रेष्ठतम स्थान का अधिकारी रहा है। नृत्य, गीत, संगीत, चित्र, शिल्प, अभिनय का वह मनोहारी संगम है। वह सभी कलाओं की सर्वंकष अभिव्यक्ति है, जिससे नाटक देखने की अनुभूति नितांत वैविध्य, आनंदमय रहती है, इसी आधार पर उसे आँखो का यज्ञ कहा गया है। "काव्येषु नाटकं रम्यं" कहकर उसे संस्कृत साहित्यशास्त्र में प्रतिष्ठित किया गया है। एक साथ मनोरंजन एवं प्रबोधन नाटक की मौलिक विशेषताएँ हैं। सामाजिक का मनोरंजन कर उसका प्रबोधन करना, ज्ञानार्जन करना, उसकी विचारशक्ति को जागृत कर उसे समसामायिकता के प्रति चिंतनशील दृष्टि देना नाटक के महत् उद्देश्य रहे हैं। बदलते हुए युगसंदर्भ में नाटक के उद्देश्य भी बहुमुखी हो रहे हैं। आज समसामायिक युगबोध नाटक का प्रधान उद्देश्य बन गया है।

स्वातंत्र्योत्तर काल में हिंदी नाटकसाहित्य ने विकास की एक नयी दिशा ली। वैज्ञानिक खोजों से नाटक में रंगमंचीय सुविधाएं बढ़ने लगी। प्रायोगिकता नाटक का प्रधान अंग बना। प्रकाश, ध्वनियंत्र, बिजली के

अत्याधुनिक तकनीक से नाटक के मंचीय आयामों में तरलता आ गयी। नाटक सुविधा के साथ, तरलता से अभिनीत होने लगा। छटें, सातवें तथा आठवें दशक का नाटकसाहित्य इन्हीं सुविधाओं को लेकर चलता है। मंचीय उपकरणों के सहयोग से इस युग का नाटक प्रायोगिक दृष्टि से विशेष सफल रहा। उपेंद्रनाथ अश्क, धर्मवीर भारती, डा.जगदीशचंद्र माथुर, ज्ञानदेव अग्निहोत्री, गिरिश रस्तोगी, लक्ष्मीनारायण लाल, लक्ष्मीनारायण मिश्र, सुरेन्द्र वर्मा, मोहन राकेश आदि नाटककारों ने हिंदी नाटक साहित्य को प्रयोगशील नाटक दिए। इन नाटककारों के साथ ही डा.शेख ने भी प्रायोगिक दृष्टि से अपने नाटकों में मौलिक प्रयोग किए। उनका हर नाटक एक नया प्रयोग रहा। केवल "कालजयी" को छोड़कर उनके सभी नाटक मंच पर सफलता से अभिनीत हुए हैं, और आज भी होते हैं।

'पोस्टर' डा. शेख की एक मौलिक कृति है। शिल्प, शैली तथा प्रस्तुति की दृष्टि से वह एक नवीन प्रयोग रहा है। 'पोस्टर' मध्यप्रदेश के आदिवासी प्रदेश की वास्तव स्थिति प्रस्तुत करता है। डा.शेख कुछ समय तक अनुसंधान अधिकारी भी रहे। इस संदर्भ में वे मध्यप्रदेश के बस्तर, नारायणपुर जिले के आदिवासी प्रदेश में काफी घूम चुके थे। वहाँ पर उन्होंने आदिवासीयों का पिछड़ा हुआ जीवन देखा। शिक्षा एवं ज्ञान के अभाव में उन पर हो रहे जमींदार वर्ग के अन्याय-अत्याचार देखे। इस शोषण के प्रति उदासीन, भ्रष्ट प्रशासन व्यवस्था, निष्क्रीय, लाचार पुलिसयंत्रणा देखी। मजदूरों का सभी ओर से हो रहा शोषण देखकर डा.शेख विशेष चिंतित हुए। आदिवासी जीवन की करुण त्रासदी देखकर उनके अंदर का सृजनशील नाटककार बेचैन हुआ। 'पोस्टर' उनकी इस चिंता एवं बेचैनी की अभिव्यक्ति है, जिसमें आदिवासी प्रदेश की यथार्थता अपने मूल परिप्रेक्ष्य में उजागर हुई है।

'पोस्टर' समसामयिक नाट्यचेतना का मौलिक अविष्कार है। कीर्तनशैली में नाटक की प्रस्तुति, नाविन्यपूर्ण शिल्प, अभिनयगत मौलिक प्रयोग

रंगमंचीय तादगी "पोस्टर" की निजी विशेषताएँ रही हैं। इन्हीं विशेषताओं से "पोस्टर" की ये प्रायोगिक विशेषताएँ, शिल्पगत नवीनता, तमस्याप्रधान आदिवासी परिवेश, संघर्षमय आदिवासी जीवन आदि का मूल्यांकन प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध में किया गया है।

प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध के प्रथम अध्याय में हिंदी नाटक साहित्य का विकासात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। पूर्व भारतेंदु युग से लेकर आधुनिक नाटकसाहित्य के क्रमिक विकास पर प्रकाश डाला गया है। नाटक साहित्य के हर युग की विशेषताएँ, कमियाँ हिंदी नाट्यसाहित्य के समीक्षा ग्रंथो के आधार पर प्रस्तुत की गयी हैं। आधुनिक नाटक साहित्य के अंतर्गत डा. शंकर शेष के नाटकसाहित्य की अलग से चर्चा की गयी है। आधुनिक नाटक साहित्य में डा. शंकर शेष का स्थान, उनके नाटकों की विशेषताएँ, प्रायोगिक मूल्य आदि पर विचार किया गया है।

संस्कृत नाट्य परम्परा एक समृध्द एवं सुविकसित नाट्य परम्परा रही है। संस्कृत से प्रेरणा ग्रहण कर हिंदी में नाट्यचेतना का उदय हुआ। पूर्व भारतेंदु युग में नाटक की अपनी कोई पहचान नहीं थी। अत: इस काल में संस्कृत से हिंदी में अनुवाद की परम्परा जारी रही। भारतेंदु युग में हिंदी नाटक ने नया मोड लिया। अनुदित नाट्य परम्परा के साथ ही कुछ मौलिक नाटक भी लिखे गए। समसामयिक राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना की अभिव्यक्ति एवं खड़ी बोली का प्रयोग भारतेंदु की मौलिक प्रतिभा का सूचन है, किंतु शिल्प की दृष्टि से इस युग का नाटक साधारण रहा।

द्विवेदी युग हिंदी नाटक साहित्य की अगली कड़ी है। भारतेंदु द्वारा नवनिर्मित नाट्यचेतना द्विवेदी युग में आकर अधिक विकसीत न हो पायी अनुवादों की भरमार, चमत्कार प्रदर्शन तथा रंजनप्रियता के कारण इस समय का नाटक स्थूल रहा।

प्रसाद युग हिंदी नाटक-साहित्य का विकासशील युग रहा। इस युग में हिंदी नाटक, संस्कृत नाटक के प्रभाव से मुक्त होकर अपना स्वतंत्र अस्तित्व निर्माण कर सके। स्वयं प्रसादजी द्वारा भारतीय तथा पाश्चात्य नाट्यसिध्दांतों के समन्वयात्मक प्रयोग से हिंदी नाटक ने एक नयी दिशा ली। प्रेरक सांस्कृतिक इतिहास का चित्रण कर समकालीन समस्याओं के प्रति चिंतनशील दृष्टिकोण इस समय के नाटक साहित्य की महत्वपूर्ण विशेषता रही। साहित्यीक मूल्य की दृष्टि से इस युग के नाटक उल्लेखनीय रहे, परंतु इस समय में नाटक के प्रयोग की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया गया।

स्वातंत्र्योत्तर काल कथ्य, शिल्प, शैली तथा प्रयोग की दृष्टि से नवचेतना लेकर आया। इतिहास-पुराण के माध्यम से समकालीन युगबोध की अभिव्यक्ति अधिक मात्रा में होती रही। रेडियो नाटक, एकांकी, प्रतीक नाटक के रूप में नाटक विकसित होता रहा। छटे, सातवें तथा आठवें दशक में, नाटक के प्रायोगिक मूल्य अधिक विकसित होते रहे। रंगमंचीय उपकरणों में नये-नये तकनिक से नाटक सुगमता से अभिनीत होने लगा। अत: नाटक की प्रायोगिक क्षमता बढ़ गयी, जिसमें धर्मवीर भारती, उपेंद्रनाथ अश्क, विष्णु प्रभाकर, जगदीशचंद्र माथुर, मोहन राकेश, ज्ञानदेव अग्निहोत्री, सुरेन्द्र वर्मा, लक्ष्मीनारायण लाल, शंकर शेष आदि का महत्वपूर्ण योगदान रहा। अपनी प्रायोगिक विशेषताओं से डा.शेष के नाटक अपना स्वतंत्र स्थान रखते हैं। समकालीन नाट्यचेतना के साथ रहकर डा.शेष ने विभिन्न प्रायोगिक नाटक दिए, जो हिंदी नाट्यसाहित्य के विकास में महत्वपूर्ण रहे। प्रायोगिक धरातल पर डा.शेष का "पोस्टर" विशेष सफल रहा।

प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध के दूसरे अध्याय में आदिवासी जीवन का पिछड़ापन, वहाँ की समस्यामूलक स्थिति को जड़सहित प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। आदिवासी जीवन की विभिन्न समस्याएँ, वहाँ की विषम परिस्थितियों की उपज है, जो नाटक में अंग रूप में प्रस्तुत हुई हैं। ये सारी

समस्याएँ- आर्थिक समस्या, धार्मिक समस्या, शोषण समस्या, नारी समस्या, अधिकार की समस्या, कानून समस्या आदि दर्शक की विवेकबुध्दि को जागृत करती हुई उसे समस्यामूलक आदिवासी जीवन के प्रति सोचने को बाध्य करती है।

'पोस्टर' सदियों से पीड़ित, दलित, उपेक्षित आदिवासी जीवन की यथार्थ अभिव्यक्ति है। शोषक वर्ग के अन्याय-अत्याचार से पीड़ित आदिवासी जीवन, युग-युग से जमींदार वर्ग की दासता में खुले आम नीलाम हो रहा आदिवासी नारीत्व, आदिवासी मजदूरों का तभी ओर से हो रहा शोषण 'पोस्टर' में वास्तव धरातल पर मूर्त हुआ है। 'पोस्टर' के आदिवासी परिवेश का वास्तव, वर्तमान आदिवासी परिवेश का दाहक वास्तव है। जमींदार पटेल के शोषणतंत्र से पीड़ित, वंचित आदिवासियों की करुण त्रासदी पाठक के मन को झकझोर देती है।

शोषकवर्ग की स्वार्थ लोलुपता सामाजिक-आर्थिक विषमता को जन्म देती हैं और अर्थ के वितरित विभाजन से विभिन्न सामाजिक समस्याएँ निर्माण होती हैं। आदिवासियों का पिछड़ापन तथा उनकी शोषित स्थिति का प्रधान कारण है, उनका अज्ञान, जिसकी वजह से वे वर्तमान स्थिति से, अपने स्वायत्त अधिकारों से अनजान हैं। आदिवासियों की यही स्थिति, शोषक वर्ग की शोषणनीति को बढ़ावा देती है, अत्याचार के अतिरेक का कारण बनती है। इसी अज्ञान की वजह से अंधश्रध्दा का साया उनके मन-मस्तिष्क पर हावी रहता है। अत: धर्मविषयक पाप-पुण्य की कल्पनाएं, अंधविश्वास अनपढ आदिवासी जनता में निर्माण कर शोषक जमींदार अपनी स्वार्थांधिप्सा को बनाये रखते हैं। आज वर्तमान स्थिति में धर्म का हो रहा अवमूल्यन, धर्म के नाम पर शोषक वर्ग की बढ रही तानाशाही, स्वार्थलिप्सा और परिणामस्वरूप आदिवासी जनता की हो रही दयनीयता, बेबसी डा.शेख ने यहाँ वास्तवता से प्रस्तुत की है।

पूँजीवादी वर्ग किसप्रकार विभिन्न हथकंडे अपनाकर अपनी शोषणनीति को बनाये रखता है, इसका वास्तव चित्र "पोस्टर" में जमींदार पटेल के माध्यम से मूर्त हुआ है। अपनी स्वार्थनीति को बनाये रखने के लिए शोषक वर्ग की मनमानी एवं मजदूर वर्ग का निरीह शोषण आज आम बात हो गई है। जमींदार शोषक वर्ग की दासता में चापलूसी करती हुई लाचार प्रशासनव्यवस्था तथा निष्क्रीय, भ्रष्ट पुलिसयंत्रणा भी इस शोषण में उतनी ही जिम्मेदार है। इस सारे भ्रष्ट, कर्तव्यहीन प्रशासन में सुधार लाने के लिए न्याय्य कानून व्यवस्था की अत्यंत आवश्यकता है। साथ ही, आदिवासी जनता का शिक्षित एवं समझदार बनना भी आवश्यक है, तभी इन समस्याओं को निपटा जा सकता है।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि "पोस्टर" आदिवासी प्रदेश का समस्यामूलक यथार्थ उसकी भीषणता के साथ उजागर करता है। आज वर्तमान स्थिति में इन विषम परिस्थितियों से लोहा लेने के लिए "राघोबा" जैसे समाज सुधारकों के प्रभावी नेतृत्व की अत्यंत आवश्यकता है। स्वायत्त अधिकारों की प्राप्ति के लिए मजदूरों की एकात्म संघशक्ति की, संघर्षशील वृत्ति की आवश्यकता है। यह परिस्थिति की माँग है, जिसे डा. शेष ने वास्तव धरातल पर मूर्त किया है। नाटककार का यह प्रयास निश्चय ही प्रेरणादायी रहा है। इसप्रकार "पोस्टर" में आदिवासी प्रांत की विभिन्न सामाजिक समस्याएँ अपने मूल परिप्रेक्ष्य में उजागर हुई हैं।

प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध के तीसरे अध्याय में नाटकीय संघर्ष के स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है। संघर्ष मानवी जीवन का अनिवार्य अंग है, जिसके बिना उसे पूर्णत्व प्राप्त नहीं होता। नाटक भी संघर्ष के बिना प्राणहीन बन जाता है। "पोस्टर" भी संघर्षशील आदिवासी जीवन को वास्तव दृष्टि से प्रस्तुत करता है, जो आदिवसी परिवेश की विषम परिस्थितियों की उपज है।

"पोस्टर" का संघर्ष परिस्थिति सापेक्षता में उजागर होता है। मध्यप्रदेश के आदिवासी प्रांतों का भ्रमण करते हुए, अनुसंधान अधिकारी की हैसीयत से उन्होंने जो देखा, परखा वही "पोस्टर" में अभिव्यक्त हुआ है। जीवन के हर मोड़ पर शोषक वर्ग से उनका हो रहा शोषण, उनपर हो रहे अन्याय-अत्याचार उनके मन में अनायास ही संघर्ष की चेतना को निर्माण करते है। भ्रष्ट एवं लाचार प्रशासन व्यवस्था की निष्क्रीयता तथा पुलिसयंत्रणा की कर्तव्यहीनता इस शोषणतंत्र को और भी बढ़ावा देती है, जिसमें बेचारा आदिवासी वर्ग सभी ओर से पिसता जा रहा है, लिसलता जा रहा है। आदिवासी परिवेश की इस स्थिति में सुधार लाने के लिए, विषम परिस्थितियों से जोड़ा लेने के लिए संघर्ष चेतना एक अनिवार्य आवश्यकता बन जाती है। "पोस्टर" का संघर्ष इसी परिस्थिति सापेक्षता में, स्वाभाविक रूप से आगे बढ़ता है।

प्रस्तुत नाटक में लेखक आदिवासियों के संघर्ष के विभिन्न स्तर जैसे- मालिक-मजदूर संघर्ष, शोषक-शोषित संघर्ष, आर्थिक संघर्ष, धार्मिक संघर्ष, सामाजिक संघर्ष, पति-पत्नी संघर्ष, स्त्री-पुरुष संघर्ष आदि यथार्थ धरातल पर प्रस्तुत किए हैं। अंत में आदिवासी मजदूर वर्ग अपने संघर्ष में पूरी तरह से सफल नहीं होता। लेखक ने उस परिस्थिति में जितनी मात्रा में संघर्ष विकसित हो सकता था, उतनी ही मात्रा में उसे दिखाया है। यहाँ लेखक का प्रयास आदर्श स्थापना न होकर वास्तव तथ्य को प्रस्तुत करना रहा है। अत: उसकी अभिव्यक्ति नितांत स्वाभाविक एवं परिवेश के अंग रूप में ही हुई है। अत: "पोस्टर" का संघर्ष यद्यपि बाह्य दृष्टि से वर्गीय लगता है, जिसके आधार पर उसे साम्यवादी विचारधारा की प्रतिक्रिया कहा जा सकता है, किंतु वास्तवता तो यह है कि वह किसी विचारधारा की प्रतिक्रिया न होकर आदिवासी जीवन की यथार्थता है, जो नाटक में स्वाभाविकता से प्रस्तुत है, जो उस परिवेश की, परिस्थिति की उपज है। इसीकारण "पोस्टर" के संघर्ष

का स्वल्प अधिकांशत: बाह्य रहा है। मानसिक संघर्ष नाटक में केवल एक-दो पात्रों तक ही सीमित रह जाता है। फिर भी "पोस्टर" का संघर्ष आदिवासी जीवन का दाहक वास्तव है, जिससे पाठक भी सचेत होकर अंतर्मुख बन जाते हैं। इस दृष्टि से "पोस्टर" नाटक का संघर्ष अधिक सफल एवं मौलिक सिध्द होता है।

प्रस्तुत लघु-शोध-प्रबंध के चौथे अध्याय में "पोस्टर" की शैली एवं शिल्पगत विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है। साठोत्तरी नाटक विशेषत: आठवें दशक का नाटक प्रायोगिक विशेषता लेकर आया। इस काल में शिल्प शैली की दृष्टि से नाटक में नवनवीन प्रयोग किए जाने लगे। भारतीय लोककलाओं का सार्थक समन्वय कर लोकनाटक की शैली में, नाटक विशेष सफलता से अभिनीत होने लगे। "पोस्टर" इसी समकालिन नाट्यचेतना का निर्वाह करनेवाला नाटक है।

"पोस्टर" महाराष्ट्र की कीर्तनशैली में प्रस्तुत होता है। प्रस्तुत नाटक में लेखक ने विभिन्न शैलियों का सामूहिक प्रयोग कर नाटक के शिल्पविधान में रोचकता निर्माण की है। समूह नृत्य शैली, समूह गान के साथ ही मास्क या मुखौटे का प्रयोग बड़ा अनूठा रहा है। मुखौटे के प्रयोग में लेखक ने व्यंग्यशैली का मार्मिक प्रयोग किया है। समूह नृत्य में पाश्चात्य नाट्यशैली "बॅले" अर्थात नृत्यनाट्य का प्रयोग तथा पाश्चात्य नाट्यशैली "माईम" अर्थात नृत्त [गीतविहीन अंगविक्षेप] के अभिनय प्रयोग से नाटक की प्रस्तुति में नवचेतना आयी है।

शिल्प की दृष्टि से "पोस्टर" में नाटक के भीतर नाटक का प्रयोग एवं कथावस्तु के दोहरे आयाम में नाटकीय कौशल दिखाई देता है। एक ही कलाकार दोनों कथाओं के पात्रों की सशक्त भूमिका निभाते हैं। सशक्त भाषा एवं मार्मिक संवाद नाटक के दृश्यविधान एवं परिवेशगत वातावरण निर्मिति में अधिक सहायक रहे हैं, जिससे नाट्य प्रस्तुति में सरलता आ गयी है।

भाषागत तरलता, सुबोधता, वास्तवदर्शिता साठोत्तरी नाट्यशिल्प की मौलिक विशेषता है, जितका सफल प्रयोग "पोस्टर" में दिखाई देता है। "पोस्टर" की भाषा कथ्य के अनुसार सुबोध, प्रवाही तथा पात्रानुकूल है। छोटे-छोटे, मार्मिक अर्थबोध्य संवाद कथ्य को गतिशील बनाते हैं। दृश्यविधान की सरलता एवं रंगमंचीय सादगी "पोस्टर" का अनूठा आकर्षण है। कीर्तन जैसी गंभीरशैली को अपनाकर भी नाटक की प्रस्तुति नितांत रोचक, आस्वादय रहीहै। इसप्रकार शिल्पगठन की दृष्टि से नाटक जटिल होकर भी प्रस्तुति में कहीं भी कठिनाई तथा दीलापन नहीं आ गया है। शिल्पविधी की दृष्टि से भी "पोस्टर" एक मौलिक एवं वैशिष्टयपूर्ण कृति है।

प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध के पाँचवे अध्याय में प्रायोगिक दृष्टि से "पोस्टर" का मूल्यांकन करने का प्रयत्न किया है। १९७७ में लिखा "पोस्टर" आठवें दशक के नाटक साहित्य की महत्वपूर्ण उपलब्धि रही। प्रयोगधर्मिता समकालीन नाट्यचेतना की विशेषता रही। "पोस्टर" की प्रयोगिकता समकालीन नाट्यचेतना का मौलिक आविष्कार है। शिल्प, शैली, प्रस्तुति, रंगमंचीयता, दृश्ययोजना, अभिनेयता आदि दृष्टि से "पोस्टर" एक अनोखा प्रयोग रहा है।

नाटक रंगमंचपर खेली जानेवाली विधा है। जितनी मात्रा में नाटक का रंगविधान कौशलपूर्ण एवं सार्थक होगा, नाटक की प्रस्तुति उतनी ही प्रभावी होगी। "पोस्टर" का रंगमंच मंचीय सुविधाओं के कौशलपूर्ण प्रयोग से बड़ा सार्थक बन पड़ा है। प्रकाशयोजना का सृजनात्मक प्रयोग, ध्वनि-संगित का सार्थक समन्वय, लोकसंगीत की कलात्मक उँचाई आदि से "पोस्टर" का रंगविधान अधिक सरल, प्रभावी बन गया है, सशक्त भाषा एवं मार्मिक संवादों से रंगमंच पर किसी विशेष दृश्यसज्जा की आवश्यकता नहीं पड़ती। नाटक रंगमंच पर सुगमता से अभिनीत होता है।

अभिनय की दृष्टि से भी "पोस्टर" एक उल्लेखनीय कृति है। प्रस्तुत कृति में लेखक ने अभिनय-तत्व में भारतीय तथा पाश्चात्य अभिनय वृत्तियों को मिला दिया है, जो "पोस्टर" की अभिनयगत महती विशेषता रही है। अभिनय संपन्न भाषा एवं सशक्त संवाद समकालीन नाट्यचेतना की मौलिक विशेषता रही है। "पोस्टर" की भाषा एवं संवाद इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय रहे हैं। एक ही पात्र द्वारा विभिन्न भूमिकाओं को प्रस्तुत करने में नाटकीय कौशल दिखाई देता है। समय-समय पर प्रयुक्त गीतयोजना नाट्य प्रस्तुति में विशेष सहायक तथा सरस बन पड़ी है।

प्रायोगिक दृष्टि से हिंदी नाटक का आठवाँ दशक विशेष उल्लेखनीय रहा। इस समय में हिंदी नाटक के प्रयोगिक मूल्य अधिक विकसित होते रहे। नाट्यप्रयोग की सुगमता की दृष्टि से नये-नये तकनीक का विकास होने लगा, जिसके सार्थक प्रयोग से नाटक सफलता से मंच पर अभिनीत होने लगे। प्रयोगधर्मिता की दृष्टि से इस काल में नाटक ने विकास की नयी दिशा ली। डा. जगदीशचंद्र माथुर, डा.लक्ष्मीनारायण लाल, गिरिश रस्तोगी, मोहन राकेश, उपेंद्रनाथ अश्क, धर्मवीर भारती, ज्ञानदेव अग्निहोत्री, सुरेंद्र वर्मा, आदि नाटककारों ने हिंदी नाटक की प्रयोगिकता बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। डा. शेष का भी इसमें विशेष योगदान रहा। "पोस्टर" इसी प्रयोगधर्मी परंपरा की एक विकसित कड़ी है।

इसप्रकार प्रायोगिक धरातल पर "पोस्टर" एक नवीन, मौलिक एवं कलात्मक प्रयोग रहा। अपनी प्रयोगिक विशेषताओं से वह एक प्रभावी एवं सफल नाटक रहा है।

इसप्रकार प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध में "पोस्टर" का कथ्य, संघर्ष, शिल्प शैली, प्रयोग की दृष्टि से अनुशीलन करने का प्रयत्न किया है।